भाद्र कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक - २७-०९-१९६२
गाथा-३१, ३३, २६१, २६२, २६४,
प्रवचन-३

यह ज्ञानसमुच्चयसार, तारणस्वामी रचित। उसमें यहाँ सम्यग्दर्शन का अधिकार चलता है। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान सम्यक् नहीं होता, चारित्र भी नहीं होता। सम्यग्दर्शन बिना सब व्रत, तप, क्रिया सब व्यर्थ है। उसमें पुण्य बँधे परन्तु जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। इसलिए सम्यग्दर्शन की आवश्यकता। यहाँ से चला है न अपने, २५वीं गाथा से चला है। सम्यग्दर्शन की आवश्यकता। यह तो पहले अपने कल आया था। प्रथम सम्यग्दर्शन का उपदेश होना चाहिए। पहले में पहले सम्यग्दर्शन क्या है, उसे साधने का उपदेश पहले होना चाहिए। पश्चात् चारित्र, व्रत, तप, और ब्रह्मचर्य बाद में होता है। पहले जिसे सम्यग्दर्शन नहीं हुआ... ३० गाथा तो आ गयी। ३१वीं।

संमत्तं सार्धनं भव्यं सुद्ध तत्त्व समाचरेत्।
संमत्तं जस्य तिस्टंते, ति अर्थं न्यान संजुतं॥३१॥

क्या कहते हैं? अहो! **भव्य जीव ही सम्यग्दर्शन को सिद्ध करता है। 'संमत्तं सार्धनं भव्यं'** तीन न्याय पड़े हैं। एक तो भव्य सम्यग्दर्शन को साधता है। दूसरा, सम्यग्दर्शन अन्तर सन्मुख पुरुषार्थ से होता है। समझ में आया? कोई कहे कि गर्म गल जाये तो सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा नहीं है। यह बतलाने के लिये लिया है कि **'संमत्तं सार्धनं भव्यं'** भव्य अर्थात् लायक—योग्य प्राणी ही सम्यग्दर्शन को साधते हैं, साधता है। तो अन्तर स्वरूप का साधन करने से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा का ऐसा पुरुषार्थ किये बिना होता है, (ऐसा नहीं) सेठी! भाई! काललब्धि पके तो होगा, कर्म कुछ हटे तो होगा, ऐसी बात नहीं है। जब-जब आत्मा पहला सम्यग्दृष्टि होता है तो निज शुद्ध एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण परमात्मा ज्ञान, आनन्द स्वरूप के अन्दर मन्दिर में प्रवेश करके भगवान आत्मा का दर्शन करता है, वह अपने पुरुषार्थ से सम्यग्दर्शन होता है। शोभालालजी! समझ में आया?

मुमुक्षु : काललब्धि क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अपना पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख होकर प्रतीति हुई, उस पर्याय को काललब्धि जानने के योग्य हुई। समझ में आया?

कहते हैं न, देखो! '**संमत्तं सार्धनं भव्यं**' काललब्धि का तो यहाँ नाम भी नहीं लिया कि काललब्धि होगी, तब होगा। वह आदरणीय है? यहाँ तो... समझ में आया? बहुत गड़बड़ है। वर्तमान में इतनी गड़बड़ हो गयी है कि लोगों को सत्य क्या है, (उसका पता लगे ऐसा नहीं)। तारणस्वामी ने तो निश्चय यथार्थ सत्य क्या है सम्यग्दर्शन का लक्षण, जानकर जिनागम और सर्वज्ञ ने कहा, वैसा कहा है। जैसे सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा, जैसे कुन्दकुन्दाचार्य आदि सन्त और आगम (कहता) है, तत्प्रमाण उसका निश्चय सम्यग्दर्शन का कथन है। उसमें रंचमात्र भी अन्तर नहीं। उसमें ऐसा हो जाये कि अरे! व्यवहार उड़ जाता है। अरे! व्यवहार कहाँ से आया? तेरा निश्चय चैतन्यमूर्ति प्रभु, पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् राग से रहित अन्तर प्रतीति अनुभव निश्चय हुए बिना देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा के राग को व्यवहार समकित का आरोप आता है। यह निश्चय हो तो व्यवहार का आरोप आता है। निश्चय न हो तो व्यवहार का आरोप भी उसमें नहीं आता। समझ में आया? यह सब समझना पड़ेगा, शोभालालजी! अभी तक बहुत समय निकाल दिया दोनों भाईयों ने। यहाँ आये हो, उसे कहा जाये न हमारे। न आये उसे कहा जाये? कितनी बात है, देखो! एक शब्द इतना पड़ा है कि '**संमत्तं सार्धनं भव्यं**' इसमें बहुत गड़बड़ चलती है कि सम्यग्दर्शन तो ऐसे ही पुरुषार्थ बिना हो जायेगा। व्रत, नियम, क्रिया, यह पुरुषार्थ से करो, परन्तु सम्यग्दर्शन तो ऐसे ही हो जायेगा। ऐसा बड़े-बड़े आचार्य नामधारी भी ऐसा कहते हैं। ऐसा पुस्तक में लिखा है। सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तुमको खबर नहीं तो क्या? ऊपर कहे वह सच्चा। है या नहीं? सेठी! तुमको खबर नहीं हो तो ऊपर (प्रवचनकार) कहे... यह तो भाई अपने से बड़े हैं, निवृत्त होकर बैठे हैं, ब्रह्मचर्य पालते हैं, त्यागी हैं तो कुछ सच्चा कहेंगे। उसे शास्त्र का अभ्यास है तो सच्चा तो कहे न! ऐसी बात नहीं है। यदि कोई ऐसी प्ररूपणा करे कि व्यवहार क्रिया, दया, दान, राग करते-करते सम्यग्दर्शन होगा, वह कुगुरु है।

वह कुआगम का उपदेश देनेवाले हैं। उसे व्यवहार और निश्चय क्या है, इन दोनों की खबर नहीं। समझ में आया? ...भाई! जरा सूक्ष्म बात है।

'**संमत्तं सार्धनं भव्यं**' एक तो भव्य और '**सार्धनं**' जो शब्द लिया है, वह अन्तर में राग और पुण्य की रुचि छोड़कर, व्यवहार जो दया, दान, व्रत, भक्ति, विकल्प है शुभराग, उसकी रुचि छोड़कर, उससे हटकर अपने ज्ञानप्रकाश में साधन करके एकाग्र होता है पुरुषार्थ से, तो उसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है। समझ में आया? यह पैसे मिल गये। भाई पूछते थे सवेरे कि यह पैसे किस प्रकार मिलते हैं? कि पैसे मिलते हैं पुण्य से। परन्तु महाराज! बोझा लगता है। बोझा लगता है, नया पाप किया पैसा पैदा करने में। पाप का नया लोन लिया। पैसा पैदा करने का भाव है न, वह पाप है। परन्तु मिला है, वह पूर्व का पुण्य था, इससे मिला है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन पुण्य से मिले, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया? यह पण्डित लोग भी तुम्हारे हैं, वह भी बराबर समझते नहीं हैं। अच्छी बात है या नहीं? तो प्ररूपणा क्या करे? तो तुमको बुलाया। सेठ को कहा कि भाई! यह बुद्धिवाले हैं, थोड़ा पकड़ सके या क्या है? जैनदर्शन की जिनागम की सर्वज्ञ की पद्धति, रीति क्या है, यह सुने नहीं, विचारे नहीं तो सच्ची प्ररूपणा या कथन कैसे कर सके? उल्टा ही करे।

तो कहते हैं '**संमत्तं' भव्य जीव ही सम्यग्दर्शन को सिद्ध...** अर्थात् प्रगट कर सकता है। साधन से सिद्ध कर सकते हैं। समझ में आया? और '**सुद्ध तत्त्व समाचरेत्**' कहते हैं, **उस सम्यक्त्वी को शुद्ध आत्मिक तत्त्व का आचरण (अनुभव) करनायोग्य है।** आचरण कहो या अनुभव कहो। आचरण समझते हो? सम्यग्दर्शन। आचरण दो प्रकार के हैं। इसमें है, भाई! देखो अपने है न शीलपाहुड में। शीलपाहुड में सम्यक्त्व आचरण और चारित्र आचरण (दो हैं)। बालचन्दभाई! ऐसा यहाँ है, देखो! यह पृष्ठ १४३। २६२ गाथा तुम्हारे। ज्ञानसमुच्चयसार पृष्ठ १४३। देखो, शीलपाहुड में कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने कहा है कि एक सम्यग्दर्शन का आचरण होता है और एक चारित्र का आचरण होता है। आचरण दो प्रकार के (होते हैं)। जड़ के आचरण की बात यहाँ नहीं है। जड़ की क्रिया, शरीर की क्रिया शरीर से होती है, अपने से नहीं। और अपने में अन्दर दया, दान भाव पुण्यादि व्रत का आता है, वह राग का आचरण है, मलिन

परिणाम शुभ पुण्यबन्ध का आचरण है। सम्यक् आचरण के दो प्रकार हैं। एक सम्यग्दर्शन का आचरण, एक सम्यक्चारित्र का आचरण। समझ में आया ? सेठ! २६२ गाथा है।

न्यानं दंसन च सम्मं, सम भावना हवदि चारित्तं।
चरनंपि सुध चरनं, दुविहि चरनं मुनेयव्वा॥२६२॥

सेठ! है इसमें ? '**दुविहि चरनं मुनेयव्वा**' अभी इसमें से भाई कोई ऐसा निकाले कि '**दुविहि चरनं**' तो व्यवहार-निश्चय है, कोई ऐसा निकाले। तो पीछे स्पष्ट है २६३ में। पहले २६२ सुनो। पश्चात् २६३ में स्पष्ट है। '**दुविहि**' कोई निश्चय-व्यवहार निकाले तो ऐसी बात यहाँ नहीं है, यहाँ दूसरी बात है। क्या कहते हैं, देखो!

'**न्यानं दंसन सम्मं,' सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक काल होते हैं।** अपना शुद्ध स्वरूप प्रकाशपुंज ज्ञानानन्द आनन्दकन्द प्रभु, उसके अन्तर में राग और निमित्त की रुचि छोड़कर अन्तर शुद्ध स्वभाव के अनुभव की प्रतीति होती है, उसके साथ दर्शन और ज्ञान दोनों उत्पन्न होते हैं। सम्यग्दर्शन के साथ। दीपक का प्रकाश हुआ तो वह दीपक और प्रकाश दोनों साथ में हैं। साथ में है या नहीं ? या पहले प्रकाश और बाद में दीपक तथा पहले दीपक और बाद में प्रकाश ? दीवो कहते हैं ? क्या कहते हैं ? दीपक-दीपक। दीपक, वह कारण और प्रकाश कार्य, परन्तु दोनों साथ में हैं। दीपक कारण है, प्रकाश कार्य है, परन्तु दीपक और प्रकाश एकसाथ में होते हैं। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन कारण है, सम्यग्ज्ञान कार्य है। परन्तु एक समय में साथ में होते हैं। सेठी! क्या कहते हैं, देखो! **सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान... 'सम्मं'** देखो **'सम्मं'** शब्द पड़ा है न ? **'सम्मं' एक साथ होते हैं।** पहले सम्यग्दर्शन होता है और पश्चात् सम्यग्ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। तो कहते हैं कि एक समकाल में होते हैं।

'**सम भावना चारित्तं हवदि' समभाव का होना चारित्र है।** समता (अर्थात्) पुण्य-पाप का विकल्प, पंच महाव्रत का राग, बारह व्रत के राग से रहित (सम परिणाम)। राग है, वह चारित्र नहीं। आहाहा! समझ में आया ? बारह व्रत का विकल्प उठता है श्रावक को, सच्चे मुनि को अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प उठता है, पंच महाव्रत का, वह राग है। वह वास्तविक चारित्र नहीं। वह पुण्यबन्ध का कारण है। वास्तविक,

सत्य चारित्र दो प्रकार का है। क्या ? देखो ! **समभाव का होना चारित्र है। वह चारित्र भी शुद्धात्मा में रमणरूप है।** शुद्ध भगवान आत्मा चिदानन्द, सच्चिदानन्द प्रभु, परमात्म वीतरागविज्ञानघन में रमण करना, वह चारित्र का स्वरूप है। कोई देह की क्रिया या पंच महाव्रत पालने का विकल्प, वह चारित्र है नहीं।

वह चारित्र भी शुद्धात्मा में रमणरूप है। उस चारित्र को दो प्रकार जानना चाहिए। उस चारित्र को भी भगवान ने, यहाँ तारणस्वामी ने चारित्र के दो प्रकार कहे हैं। क्या ? देखो, **एक सम्यक्त्वचरण दूसरा संयमचरण।** सेठी ! एक सम्यग्दर्शन का चारित्र। यह और क्या ? अष्टपाहुड में बहुत आ गया है। यह तो आगम से यहाँ लिखा है। यह कुन्दकुन्दाचार्य शीलपाहुड में इस चारित्र के दो प्रकार लेकर बहुत लिया है। सम्यग्दर्शन चरण चारित्र और चारित्र-चारित्र, संयम चारित्र। राग और पुण्य नहीं। अन्तर में आत्मा आनन्द, उस चारित्र के दो प्रकार—एक सम्यक्त्वचरण, दूसरा संयमचरण। इसका अर्थ किया।

अब यह २६३ में इसका स्पष्टीकरण करते हैं। कोई ऐसा माने कि '**दुविहि चरनं मुनेयव्वा**' तो वहाँ दो प्रकार के अर्थात् एक व्यवहारचारित्र पंच महाव्रतादि और एक निश्चय स्वरूप की स्थिरता, ऐसा यहाँ कहा होगा, दूसरी जगह ऐसा कहा जाता है, परन्तु यहाँ ऐसा नहीं। यहाँ तो ऐसा कहा जाता है... यह ज्ञानसमुच्चयसार है तो ज्ञान में सम्यग्दर्शन प्रतीति ज्ञानमय मैं आत्मा हूँ। अकेला ज्ञानपुंज, ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ऐसा अन्तर में ज्ञान में एकाकार होकर सम्यक् प्रतीति करना, वह भी ज्ञान का सम्यग्दर्शन का आचरण है। और विशेष फिर स्वरूप में स्थिरता करना, वह चारित्र का आचरण है। दोनों निर्दोष और वीतरागी चारित्र है। उसमें राग के अंश की मिलावट नहीं। समझ में आया ?

देखो, २६३ (गाथा)।

सम्मत्त चरन पढमं, संजम चरनं पि होइ दुतियं च।
सम्मत्त चरन सुधं, पच्छादो संजमं चरनं॥२६३॥

स्पष्टीकरण किया। '**सम्मत्त चरन पढमं**' सम्यक् आचरण पहले प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन के आचरण बिना तुझे चारित्र आचरण कभी होता नहीं। तेरे सब तप और

फप सब बिना एक के शून्य हैं। बिन्दी-बिन्दी शून्य कोरे कागज में। कोरा कागज समझते हो? कागज होता है कोरा, उसमें शून्य लिखे करोड़, अरब। एकड़ा नहीं। अंक नहीं, सब शून्य है। इसी प्रकार पहले '**पढमं सम्मत्त चरन**' पण्डितजी! क्या कहते हैं? पहले सम्यग्दर्शन आचरण आना चाहिए। पहले व्रत और तप, ऐसी क्रियाकाण्ड की दया, दान या वह आचरण पहले नहीं, पहले नहीं। और पश्चात् भी आते हैं, वह शुभराग है। अन्तर के चारित्र की निर्विकल्पता का संयम आचरण भिन्न प्रकार का है। क्या कहते हैं?

पहला सम्यक्त्वाचरण है। पहला, हों! पहला भी अपने कहा था कल कि पहले समकित का उपदेश करना। सम्यग्दर्शन का उपदेश करना, यह कल आया था। आया था न पहले? कल आया था न यह? क्या? उपदेश प्रथम। पृष्ठ ९९ में आया था। ९९ में आ गया पहले। कल आया था। '**प्रथमं उवएस संमत्तं,**' देखो, इसमें भी यह आया। १७५ गाथा। कल आया था।

प्रथमं उवएस संमत्तं, सुध सार्धं सदा बुधैः।
दर्सनं न्यान मयं सुधं, संमत्तं सास्वतं धुवं॥१७५॥

बुद्धिमानों को... 'बुधैः'—बुद्धिमान ज्ञानी को **सदा प्रथम सम्यग्दर्शन का उपदेश करना चाहिए।** पहले तो सम्यग्दर्शन का उपदेश करना चाहिए। यह पहले व्रत करो और तप करो और ऐसा करो और वैसा करो। रत्नकरण्डश्रावकाचार में भी लोग कहते हैं न, देखो! उसमें बारह व्रत (लिखे हैं)। परन्तु पहले सम्यग्दर्शन लिखा है उसमें। सम्यग्दर्शन के आचरण बिना तेरे व्रत, रत्नकरण्डश्रावकाचार के बारह व्रत कहाँ से आये तुझे? रत्न कहाँ से आये? सम्यग्दर्शन रत्न बिना सम्यक्चारित्र रत्न आ गया? समझ में आया? आया था न? कल आया था यह। वह सब इसमें उतर गया है (रिकार्डिंग हो गयी है)। मुख्य गाथायें अच्छी-अच्छी लेते हैं। सार-सार लेते हैं न! सेठ की भावना है।

यह सम्यग्दर्शन आत्मा का शुद्ध स्वभाव है... सम्यग्दर्शन कोई दूसरी चीज़ नहीं है। अपने परमानन्द शुद्ध चैतन्य निर्विकल्प विकार-विकल्प से रहित, राग से रहित, उसकी अन्तर में प्रतीति, श्रद्धा-अनुभव में ज्ञान करके प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन

शुद्ध आत्मा का स्वभाव है। **दर्शन ज्ञानमयी अविनाशी निश्चल आत्मा का गुण सम्यग्दर्शन है।** देखो, **दर्शन ज्ञानमयी अविनाशी...** आत्मा ऐसा लिया। क्या कहते हैं? **'दर्सनं न्यान मयं सुधं, संमत्तं सास्वतं धुवं।'** आत्मा कैसा है? वह तो ज्ञान और दर्शन अविनाशी विशुद्ध दर्शन-ज्ञान (स्वरूप है)। आता है न भाई पंचास्तिकाय में पीछे? कि विशुद्ध दर्शन ज्ञानमय आत्मा है। विशुद्ध दृष्टा-ज्ञानमय आत्मा है। समझ में आया? त्रिकाल विशुद्ध दर्शन और ज्ञानमय आत्मा है। उसकी अन्तर में प्रतीति करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? उसमें ऐसा नहीं कहा कि राग की प्रतीति नहीं करना। यह तो नास्ति से आ जाता है। क्या कहा, देखो! **दर्शन ज्ञानमयी अविनाशी निश्चल आत्मा का गुण सम्यग्दर्शन है।** तो क्या कहा उसमें? अस्ति से बात ली है। अस्ति से लिया है। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा अविनाशी शुद्ध स्वभावमय है। उसकी अन्तर में ज्ञान-अनुभव करके प्रतीति करना, वह आत्मा का स्वभाव है। तो उसमें ऐसा तो नहीं आया तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। ऐई! पण्डितजी! यह तत्त्वार्थश्रद्धान है न उमास्वामी का (सूत्र)? सात तत्त्व की श्रद्धा सम्यग्दर्शन। यहाँ तो आत्मा की श्रद्धा सम्यग्दर्शन कहा। तो क्या तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन झूठ है?

मुमुक्षु : उसमें भी यही कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें भी यही कहा है और इसमें भी यही कहा है। यहाँ अस्ति से कहा है। अस्ति क्या? कि मैं विशुद्ध चैतन्य दर्शन-ज्ञानमय हूँ, ऐसी प्रतीति और भान हुआ तो जितने रागादि आस्त्रव, बन्ध का विकल्प रह जाता है, वह मुझमें नहीं, ऐसी उसमें श्रद्धा आ जाती है। समझ में आया? यहाँ तो अकेला कहा। तो कोई इसमें से दोष भी निकाले कि तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन कहा है शास्त्र में। तो ऐसा सम्यग्दर्शन का लक्षण कैसे बाँधा? सुन तो सही अब! यह तो आचार्यों ने सबमें ऐसा ही बाँधा है। समझ में आया? छठवीं गाथा में समयसार में (कहा कि),

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥(समयसार)

यह छठवीं गाथा है। अकेला ज्ञायकभाव पूर्ण स्वरूप दर्शन-ज्ञानमय अखण्ड

प्रभु, उसमें प्रमत्त-अप्रमत्त की दशा है, उसमें उसकी नास्ति है। भाई! वह प्रमत्त भाव विकल्प आदि यहाँ लेना है न! आस्रव-बन्ध। आस्रव-बन्ध की पर्याय उत्पन्न होती है, उसकी स्वभाव में नास्ति है। अकेला ज्ञायकभाव है, ऐसी प्रतीति जहाँ हुई तो आस्रव और बन्धभाव मुझमें नहीं, ऐसी प्रतीति उसमें आ गयी। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन कहो या आत्मा की यह श्रद्धा कहो, दोनों एक ही बात है। समझ में आया? क्या है?

अविनाशी निश्चल आत्मा... दर्शन-ज्ञानमय भगवान आत्मा की श्रद्धा। भाई! शास्त्र में तो आता है न अजीव की श्रद्धा, पुण्य-पाप की श्रद्धा, आस्रव की श्रद्धा, बन्ध की श्रद्धा। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष—सात आते हैं। इसमें तो एक आया। प्रभु! यहाँ अस्ति से आया है। और तत्त्वार्थश्रद्धान में अस्ति-नास्ति दोनों से आया है। समझ में आया? लोगों को तत्त्व का क्या स्वभाव है, उसका बोध नहीं, समझ नहीं, सुनने को मिलता नहीं। अकेले क्रियाकाण्ड व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है। यह व्यवहार से होता है, ऐसा किसे घुस गया है? कि जिसे बाह्य निमित्त से अपनी पर्याय होती है, उसे व्यवहार से शुद्ध पर्याय होती है, ऐसा घुस गया है। दोनों एक ही बात है। समझ में आया?

यह देखो, उसमें आस्रव-बन्ध के परिणाम हैं सही विकल्प, परन्तु उससे यहाँ सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं। तो विकल्प निमित्त भी हुए, अपने में निमित्त हुए, ऐसा नहीं। यह तो अपनी श्रद्धा दर्शन-ज्ञानमयी (स्वरूप है), ऐसी प्रतीति की तो वर्तमान आस्रव के विकल्प को निमित्त कहा जाता है। वह भी निमित्त-उपादान की बात है। शोभालालजी! बड़ा झगड़ा उपादान-निमित्त का। नहीं, निमित्त बलवान है... निमित्त बलवान है। भगवान! ऐसा कहाँ से आया तुझे? निमित्त बलवान की श्रद्धावाला पर से अपनी पर्याय होती है, ऐसी मान्यतावाला मिथ्यादृष्टि है और व्यवहार बलवान है, ऐसा कोई कहे... समझ में आया? कषाय की मन्दता से क्रिया बलवान है तो निश्चय होगा। दोनों मिथ्यादृष्टि मूढ़ निमित्त से लाभ माननेवाला या व्यवहार से लाभ माननेवाला, दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म परन्तु, भाई! मूल तत्त्व वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा ने क्या कहा और वही बात सन्तों ने कही है। परन्तु लोगों को ख्याल में नहीं आती। व्यवहार की दृष्टि और निमित्त की दृष्टि, संयोग की दृष्टि, ऐई! एकान्त हो

गया, एकान्त हो गया। सुन तो सही! यह सम्यक् एकान्त है। सम्यक् एकान्त अर्थात् सम्यग्दर्शन का सम्यक् एकान्त है। कहा न उसमें? **दर्शन ज्ञानमयी अविनाशी निश्चल आत्मा का गुण सम्यग्दर्शन है।** कहो, समझ में आया?

अब यहाँ अपने क्या आया? आचरण आया न? क्या आया? १४३। १४३ पृष्ठ पर चलता था। '**सम्मत्त चरन पढमं**' २६३ गाथा। २६२ पहली। देखो, आयी देखो! अब २६३। '**सम्मत्त चरन पढमं**' प्रथम उपदेश और प्रथम भाव सम्यक् चरण का पहले प्रगट होता है। पहले चारित्र प्रगट नहीं होता। संयम चारित्र पहले प्रगट नहीं होता। पहले '**सम्मत्त चरन पढमं**' देखो, समकित का भी आचरण कहा जाता है। दर्शनाचार नहीं? ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार। यह तो अभी पाँच आचार में तो व्यवहारवाला विकल्प भी लिया है। यहाँ वह नहीं। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन में निःशंक, निःकांक्ष आदि है व्यवहार, वह उसका व्यवहार आचरण है, वह यहाँ नहीं लिया।

यहाँ तो पहला सम्यक् आचरण है, वह अन्दर निर्विकल्प आत्मा की श्रद्धा में विशेष एकाग्र होकर अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर स्वरूपाचरण हुआ, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन का आचरण गिनने में आया है। बात में इतना अन्तर! भाई! यह समकित आचरण दो प्रकार का है। प्रवचनसार में लिया है। समकित आचरण, ज्ञान आचरण। वह विकल्प से लिया है, व्यवहार से लिया है और निश्चय आचरण अपना चैतन्यप्रभु ज्ञानप्रकाशमय... यह ज्ञानसमुच्चयसार है न? ज्ञान का समुच्चय सार। समुच्चय अर्थात् उसमें क्या कहना है? ज्ञान का पिण्ड प्रभु आत्मा। आत्मा ज्ञान का पिण्ड, पुंज है, उसका सार, उसमें प्रथम सम्यग्दर्शन का आचरण प्रगट होना चाहिए। उसके बिना तेरा एक कदम भी धर्म में चलेगा नहीं। समझ में आया?

और '**संजम चरनं पि होइ दुतियं च**' देखो, है? **दूसरा संयमाचरण है...** देखो, '**दुतियं च संजम चरनं पि होइ**' **दूसरा संयमाचरण है...** पहले सम्यग्दर्शन का आचरण प्रगट हुआ। अपना स्वरूप परमानन्द... ज्ञान-ज्ञानसमुच्चयसार है न? तो समयसार कहो या ज्ञानसमुच्चयसार कहो। अकेले ज्ञानस्वरूप का सार। मैं अकेले ज्ञान का प्रकाशपुंज

हूँ, उसमें एकाकार होकर प्रतीति सम्यग्दर्शन की (हुई) अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर जो आचरण हुआ, वह सम्यग्दर्शन का आचरण चारित्र कहा जाता है। कहो, पण्डितजी! यह पढ़ा भी नहीं होगा तुमने कभी। यह हाँ करते हैं। पढ़ा हो तो भी यह समझ में आये, ऐसी बात नहीं।

मुमुक्षु : ऐसी बुद्धि नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं स्वीकार करते हैं कि ऐसा हमने पढ़ा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **दूसरा संयमाचरण है सम्यग्दर्शनाचार शुद्धात्मा में रमणरूप है...** सम्यग्दर्शन आचार। देखो, है न? '**सम्मत्त चरन सुधं,**' तीसरा पद। इसका स्पष्टीकरण करते हैं। '**सम्मत्त चरन पढमं, संजम चरनं पि होइ दुतियं च**' इतना स्पष्टीकरण किया, भाई! अब कहते हैं '**सम्मत्त चरन पढमं,**' अर्थात् क्या? कि '**सम्मत्त चरन सुधं,**' वापस कोई समकित-आचरण में नि:शंक, नि:कांक्षित आदि आठ आचार जो व्यवहार है, वे कोई ले लेवे, ऐसा यहाँ नहीं। समझ में आया? नि:शंक, नि:कांक्षित आदि आठ आचार है न समकित के? तो एक निश्चय आचार है और एक व्यवहार है। तो यहाँ निश्चय आचार की बात चलती है। समझ में आया या नहीं?

देव-गुरु-शास्त्र में शंका न करना, यह व्यवहार नि:शंकता पुण्यबन्ध का कारण है। नि:कांक्ष है (अर्थात्) अन्यमत की इच्छा न करना, वह पुण्यविकल्प पुण्यबन्ध का कारण है। यहाँ यह बात नहीं। यह आठ आचार जो व्यवहार के हैं, उनकी यहाँ बात नहीं लेना है। यहाँ तो निश्चय की बात सिद्ध करनी है। लोग कहते हैं न कि तारणस्वामी ने अकेला निश्चय-निश्चय कहा है, व्यवहार का लोप किया है। परन्तु व्यवहार के लोप हुए बिना निश्चय होता नहीं, सुन तो सही! समझ में आया? इन्द्रचन्द्रजी! बड़ी गड़बड़ करते हैं, बड़ी गड़बड़। यहाँ के नाम से बाहर बड़ी गड़बड़ चली है। वहाँ आगे तो निश्चय की बात है। निश्चय अर्थात् सत्य, व्यवहार अर्थात् उपचार-आरोपित एक बात बीच में आती है। व्यवहार समकित का विकल्प, व्यवहार ज्ञान का शास्त्र पढ़ने के काल में... अभ्यास का विकल्प आता है। व्यवहारचारित्र, पंच महाव्रत का, श्रावक को बारह

व्रत का विकल्प आता है, परन्तु वे तीनों और वीर्याचार में भी परसन्मुख में राग की मन्दता में वीर्य की स्फुरणा होना और तपाचार जरा शुभभाव की क्रिया में (जुड़ना होता है), यह पाँचों आते हैं परन्तु है वह शुभराग। व्यवहार पंच आचार है शुभराग, पुण्यबन्ध का कारण है। वह वास्तव में समकित का आचरण नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पहले जो हमने समकित का आचरण कहा, वह क्या चीज़ है? कि '**सम्मत्त चरन सुधं,**' यह शब्द लिया। इसके लिये शुद्ध लिया है। **सम्यग्दर्शनाचार शुद्धात्मा में रमण रूप है...** वह आठ आचार समकित का व्यवहार, वह नहीं। समझ में आया? शब्द शब्द में शुद्धता भरी है, परन्तु उस शुद्धता का क्या अर्थ है, यह समझे नहीं तो गड़बड़ करते हैं। तो पहले स्पष्टीकरण करना पड़ा इसमें कि '**सम्मत्त चरन सुधं,**' सम्यग्दर्शन का आचरण, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र पढ़ना, ऐसा करना, वह भी एक समकित का आचरण है, ऐसा कोई कहे तो ऐसा नहीं है। वह निश्चय समकित का आचरण नहीं है। ...भाई! लो, यही सब दिक्कत करते हैं कि तुम तो व्यवहार को उड़ा देते हो। यह उड़ गया व्यवहार। देखो, क्या है व्यवहार? व्यवहार व्यवहार के घर में है। निश्चय घर में व्यवहार कैसा और व्यवहार घर में निश्चय कैसा? दोनों भिन्न वस्तु है। है, नहीं—ऐसा नहीं।

परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि '**सम्मत्त चरन सुधं, पच्छादो संजमं चरनं**' देखो, '**पच्छादो**' शब्द पड़ा है। **स्वरूपाचरण चारित्र के पीछे इन्द्रिय व मन के निरोध से संयमाचरण होता है।** पहले इन्द्रिय-मन का निरोध करे और आचरण हो जाये और सम्यग्दर्शन न हो, ऐसा तीन काल में भी होता नहीं। भाई! गाथा जरा देख-देखकर रखी थी। यहाँ आवे न थोड़ा तो हमारे ले जाना है थोड़ा। अभी चौथा कल ले जाना है। कल चौथा (प्रवचन) चलेगा। समझ में आया? आहाहा! '**पच्छादो संजमं**' **स्वरूपाचरण चारित्र के पीछे इन्द्रिय व मन के निरोध से संयमाचरण होता है।**

देखो, अब २६४। उसी और उसी में।

सम्मत्त चरन चरियं, दंसन न्यानेन सुध भावं च।
कम्ममल पयडिमुक्कं, अचिरेन लहंति निव्वानं॥२६४॥

क्या कहते हैं ? **सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानसहित शुद्धभावों के साथ जब सम्यक्त्वाचरण का अभ्यास किया जाता है,...** वह क्या चीज़ है ? कि '**सम्मत्त चरन सुधं**' यह शब्द लिया। इसके लिये शुद्ध लिया है कि सम्यग्दर्शन शुद्धात्मा में रमणरूप है। वह आठ आचार समकित का व्यवहार, वह नहीं। समझ में आया ? शब्द-शब्द में शुद्धता भरी है, परन्तु उस शुद्धता का क्या अर्थ है, यह समझे नहीं तो गड़बड़ करे। तो पहले स्पष्टीकरण करना पड़ा इन्हें कि '**सम्मत्त चरन सुधं**' यही सम्यग्दर्शन का आचरण, यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र वाँचना, ऐसा करना, वह भी एक समकित का आचरण है, ऐसा कोई कहे तो ऐसा नहीं है। वह निश्चय समकित का आचरण नहीं है। छगनभाई ! लो, यही सब विवाद करे न कि तुम तो व्यवहार को उड़ा देते हो। यह उड़ गया व्यवहार। देखो, क्या है व्यवहार ? व्यवहार व्यवहार के घर में है। निश्चय-घर में व्यवहार कैसा और व्यवहार-घर में निश्चय कैसा ? दोनों चीज़ भिन्न है। है, नहीं—ऐसा नहीं। परन्तु यहाँ तो कहते हैं '**सम्मत्त चरन सुधं**' '**पच्छादो संजमं चरनं**' देखो ! '**पच्छादो**' शब्द पड़ा है। **स्वरूपाचरण चारित्र के पीछे इन्द्रिय व मन के निरोध से संयमाचरण होता है।** पहले इन्द्रिय-मन का निरोध कर दे और आचरण हो जाये और सम्यग्दर्शन न हो, ऐसा तीन काल में होता नहीं। आज भाई गाथा जरा देख-देखकर रखी थी। यहाँ आवे न थोड़ा तो हमारे ले जाना है थोड़ा। अभी चौथा कल ले जाना है। कल चौथा चलेगा। समझ में आया ? आहाहा ! '**पच्छादो**' **स्वरूपाचरण चारित्र के पीछे इन्द्रिय व मन के निरोध से संयमाचरण होता है।**

देखो, अब २६४। उसमें नहीं।

सम्मत्त चरन चरियं, दंसन न्यानेन सुध भावं च।
कम्ममल पयडिमुक्कं, अचिरेन लहंति निव्वानं॥२६४॥

क्या कहते हैं ? **सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानसहित शुद्ध भावों के साथ जब सम्यक्त्वाचरण का अभ्यास किया जाता है,...** देखो, '**सम्मत्त चरन चरियं**' सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान अन्तर की दृष्टि से अन्तर का ज्ञान और **शुद्ध भावों के साथ...** यह शुद्ध चारित्र के साथ **सम्यक्त्वाचरण का अभ्यास किया जाता है,...** यह सम्यक् आचरण

परमात्मा अपना आत्मा, उसमें किया जाता है। परन्तु कैसा? शुद्ध अभ्यास किया जाता है। है न? शुद्ध शब्द पड़ा है। पहले शुद्ध आ गया है। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित शुद्धभावों के साथ। तब '**कम्ममल पयडि मुक्कं' कर्म प्रकृतियों का मल छूटता जाता है।** ऐसा सम्यक् आचरण... यह शैली भाई ली है न। समकित से आठ कर्म का नाश होता है। यह अष्टपाहुड़ में आया है, अष्टपाहुड़ में आया है। एक समकित के अन्दर पूर्ण परमात्मा की प्रतीति का घोलन करते-करते समकित के आचरण से, सम्यक्त्व से आठ कर्म का नाश हो जाता है, उसमें चारित्र आ जाता है। समझ में आया? यह सब शैली ली है।

सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान सहित शुद्ध भावों के साथ जब सम्यक्त्वाचरण का अभ्यास किया जाता है,... है न? '**दंसन न्यानेन सुध भावं च सम्मत्त चरन चरियं' 'सम्मत्त चरन चरियं'** उसका अन्तर में अभ्यास। '**कम्ममल पयडि मुक्कं' कर्म प्रकृतियों का मल छूटता जाता है। 'मुक्कं'** छूट जाता है, छोड़ना पड़ता नहीं। मैं आठ कर्म का नाश करूँ, ऐसी चीज़ है ही नहीं। परन्तु अपने शुद्ध स्वरूप के आचरण में रमता है तो आठ कर्म छूट जाते हैं। समझ में आया? देखो, तो कहते हैं कि '**कम्ममल पयडि मुक्कं' कर्म प्रकृतियों का मल छूटता जाता है।**

'**अचिरेन लहंति निव्वानं'** देखो, यह शब्द आया। **और यह जीव शीघ्र ही... 'अचिरेन'** अर्थात् शीघ्र। '**अचिरेन'** अर्थात् अल्प काल में '**लहंति निव्वानं' शीघ्र ही निर्वाण का लाभ प्राप्त करता है।** अल्प काल में मोक्ष की प्राप्ति का लाभ करता है। परन्तु यह शुद्ध आचरण करता है, उसे स्थिरता—चारित्र बीच में आता है और वह अल्प काल में निर्वाण को पाता है। निश्चित निर्वाण को पाता है। उसे केवलज्ञान होकर मुक्ति हो जायेगी। परन्तु यह शुद्ध आचरण करे तो। बीच में अशुद्ध विकल्प आता है और उसे ले लेवे और उसकी मदद लेकर निर्वाण होता है, ऐसा तीन काल में नहीं हो सकता। समझ में आया? लो, यह तीन गाथा बीच में आ गयी।

यहाँ अपने चलती है न ३१वीं? ३१वीं चलती है। यह '**सुद्ध तत्त्व समाचरेत्'** उसमें से आया। धर्मात्माओं को प्रथम सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ करना चाहिए। उसकी पहिचान करके, उसका ज्ञान करके, उसका बोध करके, उसके गुरुगम से यथार्थ

सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी पहिचान करके उसका प्रयत्न करना चाहिए। **'सुद्ध तत्त्व समाचरेत्' उस सम्यक्त्वी को शुद्ध आत्मिक तत्त्व का अनुभव करना योग्य है।** जो ऊपर कहा वह। यह तीन गाथा में कहा न। शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान ज्ञाता-दृष्टा वीतराग विज्ञानघन में आचरणमयी—यह आचरण करना। **शुद्ध आत्मिक तत्त्व का अनुभव करना योग्य है।**

'जस्य ति अर्थं न्यान संजुतं संमत्तं तिस्टंते' उसे **'ति अर्थं'** सम्यग्दर्शन-ज्ञान तीन पदार्थ साथ में होते हैं। समझ में आया? **उसी के रत्नत्रयमयी व ज्ञानसहित सम्यक्त्व तिष्ठता है।** ऐसा सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ करने से सम्यग्ज्ञान भी आ गया और स्वरूपाचरण आदि चारित्र भी साथ में आ गया। **'ति अर्थं न्यान संजुतं' सम्यक्त्व तिष्ठता है।** अपने सम्यग्दर्शन में तीनों भाव आ जाते हैं। निर्मल, शुद्ध। विकल्प और व्यवहार की यहाँ बात की ही नहीं। विमलचन्दजी! यह लोग कहते हैं न व्यवहार से निश्चय होता है। अब सुन तो सही! व्यवहार से क्या निश्चय होगा? व्यवहार है, चीज़ है अवश्य, जाननेयोग्य है, परन्तु आदरनेयोग्य नहीं। वह बन्ध का कारण है, आदरनेयोग्य नहीं। होता है। व्यवहारनय से कहा भी जाता है कि यह व्यवहारनय से शुभ का प्रवर्तन करता है, परन्तु आदरणीय मानकर स्वभाव का लाभ हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता।

३२। ३२वीं गाथा।

संमत्तं उत्पादते भावं, देव गुरु धर्म सुद्धंयं।
विन्यानं जेवि जानंते, समत्तं तस्य उच्यते॥३२॥

देखो! **'संमत्तं देव गुरु धर्म सुद्धंयं भावं उत्पादते'** क्या कहते हैं जरा? कोई कहता है कि हमारे तो अकेले देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करना। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करना बाहर पर। तेरी सम्यक्श्रद्धा में देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा आ जाती है। समझ में आया? देखो! **'देव-गुरु-धर्म संमत्तं देव गुरु धर्म सुद्धंयं भावं उत्पादते'** उसमें यह आ जाता है। **सम्यग्दर्शन शुद्ध देव गुरु धर्म में श्रद्धा उत्पन्न कर देता है।** ऐसा कहा है। सम्यग्दर्शन शुद्ध देव-गुरु-धर्म में श्रद्धा उत्पन्न कर देता है। परन्तु यहाँ परद्रव्य की श्रद्धा नहीं। अपना आत्मा ही देव पूर्ण है, अपना आत्मा ही अपना गुरु है और अपनी अहिंसक

राग और पुण्यरहित अपना स्वभाव, वही अपना धर्म है। समझ में आया? 'अहिंसा परमो धर्म' क्या? यह पर की दया पालने का भाव, वह अहिंसा नहीं। पर की दया पालने का भाव आता है, परन्तु उससे पर की दया पलती है, ऐसा नहीं। यह तो उसका आयुष्य हो तो बच जाये और आयुष्य न हो तो मर जाये। तेरा अधिकार है नहीं। समझ में आया? दूसरे को मैं बचाऊँ, यह तेरा अधिकार है? उसका आयुष्य हो तो बचेगा, और आयुष्य न हो तो मर जाये। कोई किसी को मार सकता है या तू किसी को बचा सकता है, ऐसा नहीं है। भाव आवे कि दूसरे न मर जायें, दुःख न हो, परन्तु वह भाव पुण्य है, पुण्य है। निश्चय में तो वह राग भी हिंसा है। अपने स्वरूप की हिंसा है। तो कहते हैं कि देव-गुरु-धर्म में सम्यग्दर्शन श्रद्धा उत्पन्न करता है।

यह आनन्दघनजी ने कहा है न भाई! 'देव गुरु धर्म की शुद्धि कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो।' क्योंकि देव-गुरु-धर्म ने तो शुद्ध सम्यग्दर्शन की बात और सम्यक् आचरण की बात की है। तो तुझे शुद्ध सम्यग्दर्शन बिना सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा कहाँ से आयेगी? हमारे देव सच्चे हैं, गुरु सच्चे हैं। परन्तु 'देव गुरु धर्म की शुद्धि कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो।' मैं ही आत्मा राग और पुण्य से रहित पर के अवलम्बन-आश्रय से रहित हूँ। ऐसी निज ज्ञान-श्रद्धा हुए बिना देव-गुरु-शास्त्र की इसे सच्ची श्रद्धा नहीं होती। समझ में आया? उसमें भी है न एक जगह है। ऐसा तो लिया है, देखो १४२ में लिया है। १४३ में आया था न वह? गुरुप्रसाद शब्द तो व्यवहार से आता है। यह तो व्यवहार डालना है न। १४२ आया न! १४३ में आया था न। देखो, १४२। २६१ गाथा। २६१।

न्यानं जिनेहि भनियं, रुवातीतं च विक्त लोयस्य।
न्यानं तिलोय सारं, नायव्वो गुरुपसाएन॥२६१॥

देखो, व्यवहार तो डाला है इसमें।

मुमुक्षु : यथार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यथार्थ व्यवहार।

देखो, '**नायव्वो गुरुपसाएन**' है? क्या कहते हैं देखो, '**न्यानं जिनेहि भनियं**'

ज्ञान का स्वभाव ही श्री जिनेन्द्र ने कहा है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ देवाधिदेव तीर्थंकर प्रभु ने ज्ञानस्वरूप स्वभाव क्या है, वह त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा है। है न पाठ में? **'जिनेहि भनियं' 'जिनेहि भनियं'** पीछे। देव और गुरु दोनों डालना है न! देव भी डाले, गुरु भी डालना है। **'रुवातीतं च विक्त लोयस्य' वह अमूर्तिक है तथापि उनमें सब लोक प्रगट हैं।** क्या कहते हैं? दो बात। **'रुवातीत'** और **'विक्त लोयस्य'** दो अर्थ लिये। एक तो कैसा है भगवान अपना ज्ञानपुंज प्रभु जिनेन्द्र ने कहा ऐसा? कि उसमें रूप नहीं, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, विकल्प नहीं, पुण्य नहीं, पाप नहीं, कोई है ही नहीं। ऐसे आत्मा का ज्ञान, वह रूपातीत है। है कैसा? यह तो नास्ति से पहले कहा। **'रुवातीतं'** भाई पहले कहीं आया था। **'विक्त लोयस्य'** परन्तु पूरे जगत को प्रगट करे, ऐसी आत्मा में सामर्थ्य है। अपने ज्ञान का भान होने से लोक क्या? छह द्रव्य क्या है, उसके ज्ञान में सब यथार्थ आ जाता है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को, केवलज्ञानी को लोकालोक का ज्ञान प्रत्यक्ष हो जाता है, परन्तु सम्यग्दृष्टि को श्रुतज्ञान में परोक्ष में सर्व द्रव्य क्या है, यह बात आ जाती है। सम्यग्दर्शन में, श्रुतज्ञान में। केवलज्ञान में तो लोकालोक प्रत्यक्ष होता है, परन्तु सम्यक् श्रुतज्ञान जहाँ भावश्रुतज्ञान सम्यग्दर्शन के साथ हुआ तो कहते हैं कि देखो! **वह अमूर्तिक आत्मा है, तथापि उनमें सब लोक प्रगट हैं।** मूर्त और अमूर्त जगत की सर्व वस्तु अपने दर्शन के साथ ज्ञान हुआ उस ज्ञान में ख्याल में आती है कि जगत ऐसा है, मैं ऐसा हूँ। समझ में आया?

'न्यानं तिलोय सारं' यह ज्ञान तीन लोक में सार है। यह समुच्चयसार नाम है न। ज्ञानपुंज प्रभु आत्मा तीन लोक का सार है। चौदह पूर्व का सार यह आत्मा है। **'गुरुपसाएन नायव्वो'** लो! परन्तु **यह ज्ञान का स्वरूप श्री गुरु के प्रसाद से जाननेयोग्य है।** तेरी कल्पना करेगा तो समझेगा नहीं। यह व्यवहार आ गया। **'गुरुपसाएन'** गुरु तो पर है। देशनालब्धि उनके पास से मिलना चाहिए। सम्यग्ज्ञानी के पास से, गुरु के उपदेश से सम्यक् क्या चीज़, यह पहले मिलना चाहिए। अज्ञानी से सुनने से सम्यग्दर्शन की देशना हो, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया? कोई कहता है न कि भाई! अज्ञानी हो, परन्तु अपने को वह सच्चा उपदेश दे तो अपने को लाभ हो जायेगा। बिल्कुल झूठ है। सम्यग्ज्ञानी की देशना निमित्तरूप होती है, यह बतलाने के लिये **'गुरुपसाएन'** कहा है।

व्यवहार तो लिया, निमित्त तो लिया। '**गुरुपसाएन**' तो क्या गुरु प्रसाद से ज्ञान मिलता है? ज्ञान तो अपने प्रसाद से मिलता है। परन्तु गुरु ने कृपा करके शुद्ध उपदेश दिया। समझ में आया? यह समयसार में भी कुन्दकुन्दाचार्य पाँचवीं गाथा में कहते हैं कि हमारे गुरु ने हमको कृपा करके शुद्ध आत्मा का उपदेश दिया। अब वह तो स्वयं स्वतन्त्र है। परन्तु विनय से बहुमान करते हुए अपना भान हुआ तो कौन गुरु निमित्त थे (यह कहते हैं)। हमारे गुरु ने... कुन्दकुन्दाचार्य जैसे ऐसा कहते हैं। पाँचवीं गाथा में।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥५॥ (समयसार)

यह पाँचवीं गाथा है। इसकी टीका में आचार्य कहते हैं। अहो! हमको सर्वज्ञ परम्परा से मिला। हमारे गुरु ने हमारे ऊपर अनुग्रह किया। क्या दूसरा कोई पदार्थ किसी के ऊपर अनुग्रह कर सकता है? अमरचन्दजी! यह टीका में आता है। यह निमित्त की बात है। जब हमारी पात्रता हुई, हमारी योग्यता हुई तो गुरु ने हमारे ऊपर कृपा की, ऐसा कहा जाता है। वरना तो समवसरण में अनन्त बार गया, अनन्त बार जैन साधु द्रव्यलिंगी हुआ, भावलिंगी सन्त के निकट। समझ में आया? भावलिंगी सन्त थे आत्मज्ञानी छठवें गुणस्थान में झूलनेवाले, छठवें-सातवें में, उनके निकट भी द्रव्यलिंगी साधु अनन्त बार हुआ है। और समवसरण में भी द्रव्यलिंग धारण करके अनन्त बार गया है। अपने चिदानन्दस्वरूप की उपादान की अपनी तैयारी बिना दूसरा निमित्त क्या करे? परन्तु जब अपनी तैयारी हो तो सच्चा निमित्त मिले बिना रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? अपनी पात्रता अपने को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की होनेयोग्य हो तो सच्चे गुरु मिले बिना रहते नहीं। यह कहते हैं, देखो! है? क्या है? २६१।

'**नायव्वो गुरुपसाएन**' कहते हैं **यह ज्ञान का स्वरूप श्री गुरु के प्रसाद से जानने योग्य है।** समझ में आया? देखो, अन्दर में भी लिखा है थोड़ा। **यह आत्मज्ञान श्री गुरु आत्मज्ञानी की संगति से शीघ्र व ठीक-ठीक मिलता है।** वापस यह तो गड़बड़ भी करते हैं कहीं। और कोई मिथ्यादृष्टि की देशना भी लागू पड़े। अन्तिम उसके भावार्थ में है। २६१ का भावार्थ है। **यह आत्मज्ञान श्री गुरु आत्मज्ञानी की संगति से शीघ्र व**

ठीक-ठीक मिलता है। ऐसा। ठीक-ठीक मिलता है। कहो, समझ में आया? यह भी उसमें कर दे किसी का कुछ। मूल चीज़ क्या है? जब अपने दर्शन-ज्ञान की पात्रता हुई तो आचार्य कहते हैं... समझ में आया? तारणस्वामी कहते हैं, आचार्य भी ऐसा कहते थे कुन्दकुन्दाचार्य। हमारी पात्रता, ऐसा नहीं कहा, ऐसा नहीं कहा, हमारे ऊपर गुरु ने कृपा की। ओहो! समझ में आया? है न यह समयसार में है। है? पाँचवीं गाथा में है। देखो!

हमारे परम सर्वज्ञ परमगुरु **निर्मलविज्ञानघन जो आत्मा में अन्तर्निमग्न...** थे और फिर **अपरगुरु-गणधरादिक से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त उन्होंने प्रसादरूप दिया है...** प्रसाद शब्द से यहाँ '**गुरुपसाएन**' शब्द पड़ा है न? यहाँ पड़ा है न? यह शब्द वहाँ पड़ा है, टीका में पड़ा है। **उन्होंने प्रसादरूप दिया है...** भगवान गुरु ने हमको क्या प्रसादी दी? कि **शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश,...** (दिया)। यह टीका है। संस्कृत शब्द है। हमारे गुरु ने हमारे ऊपर कृपा की। क्या किया? कि हमको अनुग्रह (करके) पात्रता देखकर हमारे ऊपर कृपा की। क्या कहा? तू शुद्ध आत्मा परमानन्द मूर्ति है। संसार-फंसार तेरे स्वभाव में है ही नहीं। पुण्यबन्ध का कारण जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे, ऐसा भाव भी तेरे स्वभाव में है नहीं। ऐसे चैतन्य की प्रतीति, अनुभव करो और स्थिर होओ, ऐसा हमारे गुरु ने हमारे ऊपर कृपा करके ऐसा उपदेश दिया। समझ में आया? यह शब्द यहाँ पड़ा है। '**गुरुपसाएन**' उसमें टीका में पड़ा है। अमृतचन्द्राचार्य ने प्रसादेन कहा है। उसमें भी है, देखो न! यह अपने उसके पहले ही आ गया भाई यह। २६३। यह अपने वह आया था न? बस, एक गाथा रही उसमें कि '**दर्सनं न्यान मयं सुधं, संमत्तं**' यह वहाँ से शुरु किया था अपने। वहाँ से शुरु किया मैं कि गुरुप्रसाद से जानना। परन्तु क्या जानना? कि समकित का आचरण और चारित्र आचरण। पश्चात् गाथा ली है। पहली यह गाथा ली और पश्चात् यह गाथा ली। अपने पहले वंच गयी है। कहो, समझ में आया? ओहोहो! कितनी गाथा चलती है? ३१। ३१ चलती है न? अब ३२।

सम्यग्दर्शन शुद्ध देव-गुरु-धर्म में श्रद्धा उत्पन्न कर देता है। अकेले बाह्य देव-गुरु-शास्त्र से अपने में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती, ऐसा कहते हैं। वहाँ गुरुप्रसाद से लेना, ऐसा व्यवहार से कहा। यहाँ कहा कि सम्यग्दर्शन प्रगट हो, तब सच्चे देव-गुरु-शास्त्र

की श्रद्धा तुझे होगी। **'जे विन्यानं वि जानंते तस्य समत्तं उच्यते' जो कोई भेदविज्ञान को समझता है।** क्या कहते हैं ? जो कोई भेदविज्ञान को समझता है। **'विन्यानं वि जानंते'** विकल्प राग, दया, शरीर आदि से मेरी चीज़ भिन्न है। मेरा परमात्मा मुझमें परिपूर्ण स्वभाव से मैं भरपूर हूँ। मुझमें अपूर्णता नहीं, विकार नहीं, संयोग नहीं। ऐसा पर से भेदविज्ञान व्यवहार से भेदविज्ञान, देखो! व्यवहार का विकल्प आता है। उसमें गुरुप्रसाद कहा, परन्तु गुरुप्रसाद पर जब तक विकल्प था, गुरु ने मेहरबानी की, ऐसा विकल्प था उससे भिन्न पड़े, तब भेदविज्ञान होता है। समझ में आया ?

तो कहते हैं कि **'विन्यानं वि जानंते' जो कोई भेदविज्ञान को समझता है...** राग, निमित्त, संयोग, अशुद्धता से मेरी शुद्ध चीज़ अत्यन्त भिन्न है। अनादि ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु परमात्मा मैं ही पर से भिन्न हूँ, ऐसा भेदविज्ञान को समझता है, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया ? अब देव-गुरु का विशेष कहेंगे ३३ में।

देव देवाधिदेवं च, देवं त्रिलोक वंदितं।
ति अर्थं समयं सुधं, सर्वन्यं पंच दीप्तयं॥३३॥

अब देव का स्वरूप कहते हैं। कैसे देव होना चाहिए ? समझ में आया ? सम्यग्दर्शन का स्वरूप बताकर देव का स्वरूप बताते हैं। **'देव देवाधिदेवं च,' सच्चा देव देवों का देव अर्थात् इन्द्रादि देवों से पूजनीक है।** सौ इन्द्रों से पूजनीक। परमात्मा पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञ एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक स्व और पर सर्व को जानते हैं। ऐसे सर्वज्ञ होते हैं। सर्वज्ञ किसी चीज़ को करनेवाले, हरनेवाले, लूटनेवाले, रक्षण करनेवाले होते नहीं। सर्वज्ञ तो तीन काल को जाननेवाले होते हैं। किसी शिष्य को कुछ कर दे, कोई लाभ कर दे, ऐसा नहीं है। वह तो सर्वज्ञ तीन काल, तीन लोक अपने एक समय में (जाननेवाले हैं)। देखो, यह देव का स्वरूप।

मुमुक्षु : यह व्यवहार की बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, व्यवहार की बात आवे। दोनों की बात करते हैं न! यह व्यवहार है। ऐसे देव सम्यग्दर्शन की श्रद्धा में सच्चे देव की श्रद्धा आ जाती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसी श्रद्धा न हो और सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा भी नहीं और

सम्यग्दर्शन होता है और ऐसे देव की श्रद्धा न हो, ऐसा भी नहीं है। अभी तो देव की खबर नहीं होती। अपने दर्शन की खबर नहीं होती। अभी तो विवाद।

क्या कहा? देखो, सर्वज्ञ बाद में लेंगे। **सच्चा देव देवों का देव अर्थात् इन्द्रादि देवों से पूजनीक है। तीन लोक के भक्तों द्वारा वन्दनीक है। 'त्रिलोक वंदितं देवं'** ठीक, यह तो बाहर की बात की। दो बातें तो बाहर की की हैं। कौन सी की? कि **इन्द्रादि देवों से पूजनीक है।** यह भी पुण्य की बात की और **तीन लोक के भक्तों द्वारा वन्दनीक है।** यह तो पर की बात से कहा। अब उसके अस्तित्व में क्या है? यह तो अतिशय की बात की। ... ज्ञान अतिशय की बात की। परन्तु है क्या अब वह?

तो कहते हैं कि **'ति अर्थं समयं सुधं'** देखो, **वह रत्नत्रयस्वरूप शुद्ध आत्मा है।** वह तो त्रिलोक से पूजनीक और सर्व से आदरणीय भक्तों से वन्दनीय, वह तो बाहर की बात की। परन्तु वह चीज़ सर्वज्ञ में क्या है? वह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का पिण्ड, वह आत्मा है। समझ में आया? यह देव णमो अरिहंताणं का चलता है। उसकी खबर न हो कि अरिहन्त कौन? णमो अरिहंताणं। अब देखो चौथे पद में वास्तविक आता है।

वह रत्नत्रयस्वरूप शुद्ध आत्मा.... देवाधिदेव है। परन्तु हैं कैसे? **'सर्वन्यं पंच दीप्तयं' वह सर्वज्ञ है, पाँचवें केवलज्ञान की दीप्ति शोभित (सहित) है।** सर्वज्ञ हैं। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक अपने को ज्ञात होते हैं और जैसा सर्वज्ञ ने देखा, वैसा छहों द्रव्यों में ऐसा ही होता है। ऐसा नहीं... ऐसा नहीं... ऐसा नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ का निर्णय करने जाये तो तीन काल, तीन लोक को देखते हैं, तो जैसा ज्ञान ने देखा, वैसा पर में होगा। तो पुरुषार्थ में हमारा अधिकार कहाँ रहा? यह तो लोग गड़बड़ी करते हैं। समझ में आया? यह अभी वहाँ प्रश्न हुआ था। वहाँ भी यह हुआ था। सर्वज्ञ है या नहीं? कहा। सर्वज्ञ सर्वज्ञ की जाने। अरे! सर्वज्ञ सर्वज्ञ का जाने तो तेरे आत्मा में क्या आया? समझ में आया? परन्तु लोग न समझे। मूल चीज़ की खबर नहीं न! ऐसा का ऐसा करे। वह कहा था न? अभी किसी ने नहीं कहा था? मच्छर को हाथी बताया। यह भाई ने किसी ने दृष्टान्त नहीं दिया था?

मुमुक्षु : स्कूल में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मैंने कहा था। परन्तु यहाँ दृष्टान्त दिया था न किसी ने ?

मुमुक्षु : मोर का।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोर का ? नहीं, दूसरा कुछ दिया था। दूसरा कोई दृष्टान्त दिया था। यह तो मच्छर का हमारा। यह तो यहाँ किसी ने दृष्टान्त दिया था। समाचारपत्र में कुछ आया था। जाने नहीं न कि यह कोई है, ऐसा मान ले। यह तो वहाँ स्कूल में उतरे थे। कैसा ? कुवाडवा। वहाँ बालकों को समझाने के लिये एक मच्छर का चित्र चित्रित किया। तो मच्छर तो छोटा होता है न ? बालक न समझे, इसलिए मच्छर का चित्र बड़ा लम्बा चार पैर करके बताया था। लम्बे पैर करके। शरीर छोटा। देखो, भाई ! मच्छर इसे कहा जाता है। क्योंकि बालकों को उसके पैर में कहीं कहीं वांक है, कहाँ-कहाँ रोम है, यह दिखाने के लिये बड़े चार पैर चित्रित किये। उसे तो खबर नहीं।

मुमुक्षु : उसका शरीर कितना लम्बा है...

पूज्य गुरुदेवश्री : लम्बा होता नहीं। यह तो बतलाने के लिये संक्षिप्त... मच्छर इतना यों ही होता है। उसमें गाँव में एक हाथी आया। तो बालक कहे, मास्टर साहेब ! आपने जो चित्रित किया था, वह मच्छर आया। वह हम उतरे थे। वहाँ चित्र था। खबर नहीं कि मच्छर कौन और हाथी कौन ? समझ में आया ?

इसी प्रकर देव का सर्वज्ञ का क्या स्वरूप है ? खबर नहीं। बस ! वर्तमान में सब जानते हैं, सबसे अधिक हों, वे सर्वज्ञ। ऐसा नहीं है। सर्वज्ञ वही कि **पाँचवें केवलज्ञान की दीप्ति सहित है।** केवलज्ञान जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक (में) हुआ, होता है, होगा, जिस द्रव्य की पर्याय भविष्य में होनेवाली है, वह आत्मा की या यह आत्मा इस भव में मोक्ष जानेवाला है, यह आत्मा इस भव में (सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा), यह सब भगवान के ज्ञान में झलका है। समझ में आया ?

तो कहते हैं कि वह सर्वज्ञ को जानने से क्या ? अरे ! सर्वज्ञ है, ऐसा तुझे निश्चय हो तो तुझे तेरे सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय होकर तुझे सम्यग्दर्शन हो जाये। उसमें पुरुषार्थ है। समझ में आया ? सर्वज्ञ का निर्णय करने जाये तो फिर वह तो सोनगढ़ की बात सिद्ध हो जाती है। भाई ! सोनगढ़ की कहाँ है ? क्योंकि तीन काल, तीन लोक देखते हैं। तो

जहाँ जो पर्याय क्रमबद्ध... शोभालालजी! यह क्रमबद्ध होता है, वैसे होगा। क्योंकि भगवान ने देखा, वैसे एक के बाद एक पर्याय होगी। यह तो सोनगढ़ की बात है। सोनगढ़ की नहीं, आत्मा की बात है, सुन तो सही! समझ में आया? आहाहा! ... करते हैं।

देखो, क्या लिखा है? ३३ का अंक है देखो, ३३। दो तिगड़े हैं। ३३ गाथा है न? तो यहाँ सर्वज्ञ आये ३३ में। **वही सर्वज्ञ है, पाँचवें केवलज्ञान की दीप्ति...** ओहो! सर्वज्ञ परमात्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल, तीन लोक केवलज्ञान में देखते हैं कि ऐसा है। 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होशी वीरा, अनहोनी कबहु न होशे काहे होत अधीरा?' इसमें सम्यग्दर्शन आ गया। मैं ज्ञान हूँ, दृष्टा हूँ, आनन्द हूँ, मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ। मैं सर्वज्ञ का निश्चय करनेवाला; मैं राग का करनेवाला नहीं, पर की अवस्था का कर्ता मैं नहीं। मैं तो सर्वज्ञ की प्रतीति करनेवाला, मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ऐसा अपना पुरुषार्थ हुआ, यही मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ है। सर्वज्ञ ने देखा, वैसा होगा। परन्तु यह सर्वज्ञ को तू मान तो सही कि सर्वज्ञ क्या है? माने बिना तुझे कहाँ से खबर पड़ी कि यह सर्वज्ञ है?

तो कहते हैं... समझ में आया? तारणस्वामी कहते हैं कि **वही सर्वज्ञ है, पाँचवें केवलज्ञान की दीप्ति सहित है।** उसे हम सर्वज्ञ कहते हैं। और ऐसी सर्वज्ञ की प्रतीति सम्यग्दृष्टि को ही होती है। मिथ्यादृष्टि को ऐसी प्रतीति नहीं होती।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)